सभी को पता था कि क्या सजा सुनाई जाने वाली है। भगत सिंह पर मित्रों, शुभचिन्तकों का दबाव था कि वे ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार कर लें, इससे भय और तकलीफ से लड़ने में सहारा मिलेगा। बहुत से लोगों को लगता था कि भगत सिंह अहंकारवश ईश्वर के अस्तित्व से इनकार कर रहे हैं। भगत सिंह के लिये यह प्रश्न व्यक्तिगत आस्था या अहंकार की बजाय क्रांतिकारी दृष्टिकोण की सुसंगति तथा विश्वसनीयता का प्रश्न था और सजा की घड़ी ही उसकी सबसे बड़ी परीक्षा थी। फांसी की सजा सुनाए जाने के एक सप्ताह पहले लिखा गया यह लेख भगत सिंह की वैचारिक दृढ़ता, परिपक्वता और संवेदनशीलता का बेहतरीन उदाहरण है। यह लेख भारतीय क्रांतिकारी आन्दोलन के इतिहास का बेहद मूल्यवान दस्तावेज है। **Ed - DebateOnline**

मै नास्तिक क्यों हूँ ?

- भगत सिंह

एक नई समस्या उठ खड़ी हुई है - क्या मैं किसी अहंकार के कारण सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी तथा सर्वज्ञानी ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करता हूँ ? मैंने कभी कल्पना भी न की थी कि मुझे इस समस्या का सामना करना पड़ेगा। लेकिन अपने दोस्तों से बातचीत के दौरान मुझे ऐसा महसूस हुआ कि मेरे कुछ दोस्त - यदि मित्रता का मेरा दावा गलत न हो - मेरे साथ अपने थोड़े-से संपर्क में इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए उत्सुक हैं कि मैं ईश्वर के अस्तित्व को नकार कर कुछ जरूरत से ज्यादा आगे जा रहा हूँ और मेरे घमंड ने कुछ हद तक मुझे इस अविश्वास के लिए उकसाया है। जी हाँ, यह एक गंभीर समस्या है। मैं ऐसी कोई शेखी नहीं बघारता कि मैं मानवीय कमजोरियों से बहुत ऊपर हूँ। मैं एक मनुष्य हूँ, और इससे अधिक कुछ नहीं। कोई भी इससे अधिक होने का दावा नहीं कर सकता। एक कमजोरी मेरे अंदर भी है। अहंकार मेरे स्वभाव का अंग है। अपने कॉमरेडों के बीच मुझे एक निरंकुश व्यक्ति कहा जाता था। यहाँ तक कि मेरे दोस्त श्री बी. के. दत्त भी मुझे कभी-कभी ऐसा कहते थे। कई मौकों पर स्वेच्छाचारी कहकर मेरी निंदा भी की गई। कुछ दोस्तों को यह शिकायत है, और गंभीर रूप से है कि मैं अनचाहे ही अपने विचार उन पर थोपता हूँ और अपने प्रस्तावों को मनवा लेता हूँ। यह बात कुछ हद तक सही है, इससे मैं इनकार नहीं करता। इसे अहंकार भी कहा जा सकता है। जहाँ तक अन्य प्रचलित मतों के मुकाबले हमारे अपने मत का सवाल है, मुझे निश्चय ही अपने मत पर गर्व है। लेकिन यह व्यक्तिगत नहीं है। ऐसा हो सकता है कि यह केवल अपने विश्वास के प्रति न्यायोचित गर्व हो, और इसको घमंड नहीं कहा जा सकता। घमंड या सही शब्दों में 'अहंकार' वस्तुतः स्वयं के प्रति अनुचित गर्व है। तो फिर क्या यह अनुचित गर्व है जो मुझे नास्तिकता की ओर ले गया, अथवा इस विषय का खूब सावधानी के साथ अध्ययन करने और उस पर खूब विचार करने के बाद मैंने ईश्वर पर अविश्वास किया? यह वह प्रश्न है जिसके बारे में मैं यहाँ बात करना चाहता हूँ। लेकिन पहले मैं यह साफ कर दूँ कि आत्माभिमान और अहंकार - दो अलग-अलग बातें हैं।

पहली बात तो मैं यह समझने में पूरी तरह से असमर्थ रहा हूँ कि अनुचित गर्व या वृथाभिमान किस प्रकार किसी व्यक्ति के ईश्वर में विश्वास करने के रास्ते में रोड़ा बन सकता है। मैं वास्तव में किसी महान व्यक्ति की महानता को

मान्यता न दूँ, यह तभी हो सकता है जब मुझे भी थोड़ा ऐसा यश प्राप्त हो गया हो जिसके या तो मैं योग्य नहीं हूँ या मेरे अंदर वो गुण नहीं है जो कि इसके लिए आवश्यक अथवा अनिवार्य है। यहाँ तक तो समझ में आता है। लेकिन यह कैसे हो सकता है कि एक व्यक्ति, जो ईश्वर में विश्वास रखता हो, सहसा अपने व्यक्तिगत अहंकार के कारण उसमें विश्वास करना बंद कर दे? दो ही रास्ते संभव हैं। या तो मनुष्य अपने को ईश्वर का प्रतिद्वंद्वी समझने लगे या वह स्वयं को ही ईश्वर मानना शुरू कर दे। इन दोनों ही अवस्थाओं में वह सच्चा नास्तिक नहीं बन सकता। पहली अवस्था में वह अपने प्रतिद्वंद्वी के अस्तित्व को नकारता ही नहीं है। दूसरी अवस्था में भी वह एक ऐसी चेतना के अस्तित्व को मानता है, जो पर्दे के पीछे से प्रकृति की सभी गतिविधियों का संचालन करती है। हमारे लिए इस बात का कोई महत्व नहीं कि वह अपने को ही परम-आत्मा समझता है या यह समझता है कि वह परम-चेतना उससे परे कुछ और है। मूल बात तो मौजूद है। उसका विश्वास मौजूद है। वह किसी भी तरह एक नास्तिक नहीं है। तो मैं यह कहना चाहता था कि न तो मैं पहली श्रेणी में आता हूँ, न दूसरी में। मैं तो उस सर्वशक्तिमान परम-आत्मा के अस्तित्व से ही इनकार करता हूँ। मैं इससे क्यों इनकार करता हूँ, इसको बाद में देखेंगे। यहाँ तो मैं एक बात यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यह अहंकार नहीं है, जिसने मुझे नास्तिकता के सिद्धांत को ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया। न तो मैं एक प्रतिद्वंद्वी हूँ, न ही एक अवतार और न ही स्वयं परम-आत्मा। एक बात निश्चत है, यह अंहकार नहीं है जो मुझे इस भाँति सोचने की ओर ले गया। इस अभियोग को अस्वीकार करने के लिए, आइए, तथ्यों पर गौर करें ।

मेरे इन दोस्तों के अनुसार, दिल्ली बम केस और लाहौर षडयंत्र केस के दौरान मुझे जो अनावश्यक यश मिला, शायद उस कारण मैं वृथाभिमानी हो गया हूँ। आइए, देखें कि क्या यह पक्ष सही है। मेरा नास्तिकतावाद कोई अभी हाल की उत्पत्ति नहीं है। मैंने तो ईश्वर पर विश्वास करना तब छोड़ दिया था जब मैं एक अप्रसिद्ध नौजवान था, जिसके अस्तित्व के बारे में मेरे उपरोक्त दोस्तों को कुछ पता भी न था। कम-से-कम एक कॉलेज का विधार्थी तो ऐसे किसी अनुचित अहंकार को नहीं पाल-पोस सकता जो उसे नास्तिकता की ओर ले जाए। यद्यपि मैं कुछ अध्यापकों का चहेता था तथा कुछ अन्य को मैं अच्छा नहीं लगता था, पर मैं कभी भी बहुत मेहनती अथवा पढ़ाकू विद्यार्थी नहीं रहा। अहंकार - जैसी भावना में फँसने का तो कोई मौका ही न मिल सका। मैं तो एक बहुत लज्जालु स्वभाव का लड़का था, जिसकी भविष्य के बारे में कुछ निराशावादी प्रकृति थी। और उन दिनों मैं पूर्ण नास्तिक नहीं था। मेरे बाबा, जिनके प्रभाव में मैं बड़ा हुआ, एक रूढ़िवादी आर्यसमाजी हैं। एक आर्यसमाजी और कुछ भी हो, नास्तिक नहीं होता।

अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद मैंने डी.ए.वी. स्कूल, लाहौर में प्रवेश लिया और पूरे एक साल उसके छात्रावास में रहा। वहाँ सुबह और शाम की प्रार्थना के अतिरिक्त मैं घंटों गायत्री मंत्र जपा करता था। उन दिनों मैं पूरा भक्त था। बाद में मैंने अपने पिता के साथ रहना शुरू किया। जहाँ तक धार्मिक रूढ़िवादिता का प्रश्न है, वह एक उदारवादी व्यक्ति हैं। उन्हीं की शिक्षा से मुझे स्वतंत्रता के ध्येय के लिए अपने जीवन को समर्पित करने की प्रेरणा मिली। किंतु वे नास्तिक नहीं हैं। उनका ईश्वर में दृढ़ विश्वास है। वे मुझे प्रतिदिन पूजा-प्रार्थना के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे। इस प्रकार से मेरा पालन-पोषण हुआ। असहयोग आंदोलन के दिनों में मैने राष्ट्रीय कॉलेज में प्रवेश लिया। यहाँ आकर ही मैंने सारी धार्मिक समस्याओं, यहाँ तक कि ईश्वर के बारे में उदारतापूर्वक सोचना, विचारना तथा उसकी आलोचना करना शुरू किया। पर अभी भी मैं पक्का आस्तिक था। उस समय तक मैंने अपने बिना काटे व सँवारे हुए लंबे बालों को रखना शुरू कर दिया था, यद्यपि मुझे कभी भी सिक्ख या अन्य धर्मों की पौराणिकता और सिद्धांतों में विश्वास न हो सका था। किंतु मेरी ईश्वर के अस्तित्व में दृढ़ निष्ठा थी ।

बाद में मैं क्रांतिकारी पार्टी से जुड़ा। वहाँ पर जिस पहले नेता से मेरा संपर्क हुआ, वे तो पक्का विश्वास न होते हुए भी ईश्वर के अस्तित्व को नकारने का साहस नहीं कर सकते थे। ईश्वर के बारे में मेरे हठपूर्वक पूछते रहने पर वे कहते, जब इच्छा हो तब पूजा कर लिया करो। यह नास्तिकता है जिसमें इस विश्वास को अपनाने के साहस का अभाव है। दूसरे नेता जिनके मैं संपर्क में आया वे पक्के श्रद्धालु थे। उनका नाम बता दूँ - आदरणीय कॉमरेड शचींद्रनाथ सान्याल, जो कि आजकल काकोरी षड्यंत्र केस के सिलसिले में आजीवन कारावास भोग रहे हैं। उनकी अकेली प्रसिद्ध पुस्तक बंदी जीवन के पहले पेज से ही ईश्वर की महिमा का जोर-शोर से गान है। उस सुंदर पुस्तक के दूसरे भाग के अंतिम पेज में उन्होने ईश्वर के ऊपर प्रशंसा के जो रहस्यमयात्मक वेदांत के कारण पुष्प बरसाए हैं, वे उनके विचारों का अजीबोगरीब हिस्सा हैं। 28 जनवरी, 1925 को पूरे भारत में जो 'दि रिवोल्यूशनरी' (क्रांतिकारी) पर्चा बाँटा गया था, वह अभियोग पक्ष की कहानी के अनुसार उन्हीं के बौद्धिक श्रम का परिणाम है। अब इस प्रकार के गुप्त कार्यों में कोई प्रमुख नेता अनिवार्यतः अपने विचारों को ही रखता है, जो उसे स्वयं बहुत प्रिय होते हैं और अन्य कार्यकर्ताओं को उनसे सहमत होना होता है, उन मतभेदों के बावजूद जो उनको हो सकता है। उस पर्चे में पूरा एक पैराग्राफ उस सर्वशक्तिमान तथा उसकी लीला एवं कार्यों की प्रशंसा से भरा पड़ा था। यह सब रहस्यवाद है। मैं जो कहना चाहता था वह यह है कि ईश्वर के प्रति अविश्वास का भाव क्रांतिकारी दल में भी प्रस्फुटित नहीं हुआ था। काकोरी के प्रसिद्ध सभी चार शहीदों ने अपने अंतिम दिन भजन-प्रार्थना में गुजारे थे। रामप्रसाद बिस्मिल एक रूढ़िवादी आर्यसमाजी थे। समाजवाद तथा साम्यवाद के बहुत अध्ययन के बावजूद राजेंद्र लाहिड़ी उपनिषद् एवं गीता के श्लोकों के उच्चारण की अपनी अभिलाषा को दबा न सके। मैंने उन सब में सिर्फ एक ही व्यक्ति को देखा जो प्रार्थना नहीं करता था और कहता था, 'दर्शनशास्त्र' मनुष्य की दुर्बलता अथवा ज्ञान के सीमित होने के कारण उत्पन्न होता है।' वह भी आजीवन निर्वासन की सजा भोग रहा है। परंतु उसने भी ईश्वर के अस्तित्व को नकारने की कभी हिम्मत नहीं की।

इस समय तक मैं केवल एक रोमांटिक आदर्शवादी क्रांतिकारी था। अब तक हम दूसरों का अनुसरण करते थे, अब अपने कंधों पर जिम्मेदारी उठाने का समय आया था। कुछ समय तक, अवश्यंभावी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप पार्टी का अस्तित्व ही असंभव-सा दिखा। उत्साही कॉमरेडों - नहीं नेताओं - ने भी हमारा उपहास करना शुरू कर दिया। कुछ समय तक मुझे यह डर लगा कि एक दिन मैं भी कहीं अपने कार्यक्रम की व्यर्थता के बारे में आश्वस्त न हो जाऊँ। वह मेरे क्रातिकारी जीवन का एक निर्णायक बिंदु था। 'अध्ययन' की पुकार मेरे मन के गलियारों में गूँज रही था - विरोधियों द्वारा रखे गए तर्कों का सामना करने योग्य बनने के लिए अध्ययन करो। अपने मत के समर्थन में तर्क देने के लिए सक्षम होने के वास्ते पढ़ो। मैंने पढ़ना शुरू कर दिया। इससे मेरे पुराने विचार व विश्वास अद्भुत रूप से परिष्कृत हुए। हिंसात्मक तरीकों को अपनाने का रोमांस, जो कि हमारे पुराने साथियों में अत्यधिक व्याप्त था, की जगह गंभीर विचारों ने ले ली। अब रहस्यवाद और अंधविश्वास के लिए कोई स्थान नहीं रहा। यथार्थवाद हमारा आधार बना। हिंसा तभी न्यायोचित है, जब किसी विकट आवश्यकता में उसका सहारा लिया जाए। अहिंसा सभी जन-आंदोलनों का अनिवार्य सिद्धांत होना चाहिए। यह तो रही तरीकों की बात। सबसे आवश्यक बात उस आदर्श की स्पष्ट धारणा है, जिसके लिए हमें लड़ना है। चूँकि उस समय कोई विशेष क्रांतिकारी कार्य नहीं हो रहा था अतः मुझे विश्व-क्रांति के अनेक आदर्शों के बारे में पढ़ने का खूब मौका मिला। मैंने अराजकतावादी नेता बाकुनिन को पढ़ा, कुछ साम्यवाद के पिता मार्क्स को, किंतु ज्यादातर लेनिन, त्रात्सकी व अन्य लोगों को पढ़ा जो अपने देश मे सफलतापूर्वक क्रांति लाए थे। वे सभी नास्तिक थे। बाकुनिन की पुस्तक 'ईश्वर और राज्य' इस विषय पर, यद्यपि आंशिक रूप में, एक अच्छा अध्ययन है। बाद में मुझे निरलंब स्वामी द्वारा लिखी एक पुस्तक 'सहज ज्ञान' मिली।

इसमें केवल एक रहस्यवादी नास्तिकता थी। इस विषय के प्रति मेरा गहरा रूझान हो गया। 1926 के अंत तक मुझे इस बात का विश्वास हो गया कि एक सर्वशक्तिमान परम-आत्मा की बात जिसने ब्रह्मांड का सृजन किया, दिग्दर्शन और संचालन किया-एक कोरी बकवास है। मैने अपने इस अविश्वास को प्रदर्शित किया। मैंने इस विषय पर अपने दोस्तों से बहस की। मैं एक घोषित नास्तिक हो चुका था। किंतु इसका अर्थ क्या था, यह मैं आगे बतलाऊँगा।

मई, 1927 में मैं लाहौर में गिरफ्तार हुआ। यह गिरफ्तारी अकस्मात हुई थी। मुझे इसका जरा भी अहसास नहीं था कि पुलिस को मेरी तलाश है। अचानक एक बगीचे से गुजरते हुए मैंने पाया कि मैं पुलिस वालों से घिरा हुआ हूँ। मुझे स्वयं आश्चर्य हुआ कि मैं उस समय बहुत शांत रहा। न तो मुझे कोई सनसनी महसूस हुई, न ही जरा भी उत्तेजना का अनुभव हुआ। मुझे पुलिस हिरासत में ले लिया गया था। अगले दिन मुझे रेलवे पुलिस हवालात में ले जाया गया, जहाँ मुझे पूरा एक महीना काटना पड़ा। पुलिस अफसरों से कई दिनों की बातचीत के बाद मुझे ऐसा लगा कि उन्हें मेरे काकोरी दल के साथ संबंधों के बारे में तथा क्रांतिकारी आंदोलन से संबंधित मेरी गतिविधियों के बारे में कुछ जानकारी है। उन्होंने मुझे बताया कि मैं लखनऊ में था जब वहाँ मुकदमा चल रहा था, कि मैंने उन्हें छुड़ाने की किसी योजना पर बात की थी, कि उनकी सहमति पाने के बाद हमने कुछ बम प्राप्त किए थे, कि 1926 में दशहरा के अवसर पर उन बमों में से एक परीक्षण के लिए भीड़ पर फेंका गया। उसके बाद मेरे भले के लिए उन्होंने मुझे बताया कि यदि मैं क्रांतिकारी दल की गतिविधियों पर प्रकाश डालने वाला एक वक्तव्य दे दूँ तो मुझे गिरफ्तार नहीं किया जाएगा और इसके विपरीत मुझे अदालत में मुखबिर की तरह पेश किए बगैर रिहा कर दिया जाएगा और इनाम दिया जाएगा। मैं इस प्रस्ताव पर हँसा। यह सब बेकार की बात थी। हम लोगों की भाँति विचार रखने वाले अपनी निर्दोष जनता पर बम नहीं फेंका करते।

एक दिन सुबह सी.आई.डी. के वरिष्ठ अधीक्षक श्री न्यूमन मेरे पास आए। लंबी-चौड़ी सहानुभूतिपूर्ण बातों के बाद उन्होंने मुझे, अपनी समझ में, यह अत्यंत दुःखद समाचार दिया कि यदि मैंने उनके द्वारा माँगा गया वक्तव्य नहीं दिया तो वे मुझ पर काकोरी केस से संबंधित विद्रोह छेड़ने के षड़यंत्र तथा दशहरा बम उपद्रव में क्रूर हत्याओं के लिए मुकदमा चलाने पर बाध्य होंगें। आगे उन्होंने मुझे यह भी बताया कि उनके पास मुझे सजा दिलाने व (फांसी पर) लटकवाने के लिए उचित प्रमाण मौजूद हैं। उन दिनों मुझे यह विश्वास था, यद्यपि मैं बिल्कुल निर्दोष था - कि पुलिस यदि चाहे तो ऐसा कर सकती है। उसी दिन से कुछ पुलिस अफसरों ने मुझे नियम से दोनों समय ईश्वर की स्तुति करने के लिए फुसलाना शुरू कर दिया। पर अब मैं एक नास्तिक था। मैं स्वयं के लिए यह बात तय करना चाहता था कि क्या शांति और आनंद के दिनों में ही मैं नास्तिक होने का दंभ भरता हूँ अथवा ऐसे कठिन समय में भी मैं उस सिद्धांतों पर अडिग रह सकता हूँ। बहुत सोचने के बाद मैंने यह निश्चय किया कि किसी भी तरह ईश्वर पर विश्वास तथा प्रार्थना मैं नहीं कर सकता। न ही मैंने एक क्षण के लिए भी अरदास की। यही असली परीक्षण था और इसमें मैं सफल रहा। एक क्षण को भी अन्य बातों की किमत पर अपनी गर्दन बचाने की मेरी इच्छा नहीं हुई ।

अब मैं पक्का नास्तिक था और तब से लगातार हूँ। इस परीक्षण पर खरा उतरना आसान काम न था। 'विश्वास' कष्टों को हल्का कर देता है, यहाँ तक कि उन्हें सुखकर बना सकता है। 'उसके' बिना मनुष्य को स्वयं अपने ऊपर निर्भर होना पड़ता है। तूफान और झंझावत के बीच अपने पाँवों पर खड़ा रहना कोई बच्चों का खेल नहीं है। परीक्षा की इन घड़ियों में अहंकार, यदि है, तो भाप बनकर उड़ जाता है और मनुष्य आम विश्वास को ठुकराने का साहस नहीं कर पाता। पर यदि करता है, तो उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उसके पास सिर्फ अहंकार नहीं,

वरन् कोई अन्य शक्ति है। आज बिलकुल वैसी ही स्थिति है। पहले ही अच्छी तरह पता है कि (मुकदमे का) क्या फैसला होगा। एक सप्ताह में ही फैसला सुना दिया जाएगा। मैं अपना जीवन एक ध्येय के लिए कुर्बान करने जा रहा हूँ, इस विचार के अतिरिक्त और क्या सांत्वना हो सकती है? ईश्वर में विश्वास रखने वाला हिंदू पुनर्जन्म पर एक राजा होने की आशा कर सकता है, एक मुसलमान या ईसाई स्वर्ग में व्याप्त समृद्धि के आनंद की तथा अपने कष्टों और बलिदानों के लिए पुरस्कार की कल्पना कर सकता है। किंतु मैं किस बात की आशा करूँ? मैं जानता हूँ कि जिस क्षण रस्सी का फंदा मेरी गर्दन पर लगेगा और मेरे पैरों के नीचे से तख्ता हटेगा, वही पूर्ण विराम होगा-वही अंतिम क्षण होगा। मैं, या संक्षेप में आध्यात्मिक शब्दावली की व्याख्या के अनुसार, मेरी आत्मा, सब वहीं समाप्त हो जाएगा। आगे कुछ भी नहीं रहेगा। एक छोटी-सी जूझती हुई जिंदगी, जिसकी कोई ऐसी गौरवशाली परिणति नहीं है, अपने में स्वयं एक पुरस्कार होगी-यदि मुझमें उसे इस दृष्टि से देखने का साहस हो। यही सब कुछ है। बिना किसी स्वार्थ के, यहाँ या यहाँ के बाद पुरस्कार की इच्छा के बिना, मैंने अनासक्त भाव से अपने जीवन को स्वतंत्रता के ध्येय पर समर्पित कर दिया है, क्योंकि मैं और कुछ कर ही नहीं सकता था। जिस दिन हमें इस मनोवृत्ति के बहुत से पुरूष और महिलाएँ मिल जाएँगे, जो अपने जीवन को मनुष्य की सेवा तथा पीड़ित मानवता के उद्धार के अतिरिक्त और कहीं समर्पित कर ही नहीं सकते, उसी दिन मुक्ति के युग का शुभारंभ होगा। वे शोषकों, उत्पीड़कों और अत्याचारियों को चुनौती देने के लिए उत्प्रेरित होंगे, इसलिए नहीं कि उन्हें राजा बनना है या कोई अन्य पुरस्कार प्राप्त करना है- यहाँ या अगले जन्म में या मृत्योपरांत स्वर्ग में। उन्हें तो मानवता की गर्दन से दासवृत्ति का जुआ उतार फेंकने और मुक्ति एवं शान्ति स्थापित करने के लिए इस मार्ग को अपनाना होगा। क्या वे उस रास्ते पर चलेंगे जो उनके लिए खतरनाक किंतु उनकी महान आत्मा के लिए एकमात्र शानदार रास्ता है? क्या अपने महान ध्येय के प्रति उनके गर्व को अहंकार कह कर उसका गलत अर्थ लगाया जाएगा? कौन इस प्रकार के घृणित विशेषण लगाने का साहस करता है? मैं कहता हूँ कि ऐसा व्यक्ति या तो मूर्ख है या धूर्त। हमें चाहिए कि उसे क्षमा कर दें, क्योंकि वह उस हृदय में उद्वेलित उच्च विचारों, भावनाओं, आवेगों तथा उनकी गहराई को महसूस नहीं कर सकता। उसका हृदय एक मांस के टुकड़े की तरह मृत है। उसकी आँखें अन्य स्वार्थों के प्रेत की छाया पड़ने से कमजोर हो गई हैं। स्वयं पर भरोसा करने के गुण को सदैव अहंकार की संज्ञा दी जा सकती है। वह दुखपूर्ण एवं कष्टप्रद है पर चारा ही क्या है?

तुम जाओ, और किसी प्रचलित धर्म का विरोध करो, जाओ, और किसी हीरो की, महान व्यक्ति की - जिसके बारे में सामान्यतः यह विश्वास किया जाता है कि वह आलोचना से परे है, क्योंकि वह गलती कर ही नहीं सकता - आलोचना करो, तो तुम्हारे तर्क की शक्ति हजारों लोगों को तुम पर वृथाभिमानी होने का आक्षेप लगाने को मजबूर कर देगी। ऐसा मानसिक जड़ता के कारण होता है। आलोचना तथा स्वतंत्र विचार, दोनों ही एक क्रांतिकारी के अनिवार्य गुण हैं। क्योंकि महात्माजी महान हैं, अतः किसी को उनकी आलोचना नहीं करनी चाहिए, चूँकि वह ऊपर उठ गए हैं, अतः हर बात जो वे कहते हैं - चाहे वह राजनीति के क्षेत्र की हो अथवा धर्म, अर्थशास्त्र अथवा नीतिशास्त्र के - सब सही है ।

आप चाहे आश्वस्त हों अथवा नहीं, आपको कहना चाहिए, 'हाँ यही सच है' ऐसी मानसिकता विकास की ओर नहीं ले जा सकती। यह तो स्पष्ट रूप से प्रतिक्रियावादी है।

क्योंकि हमारे पूर्वजों ने किसी परम-आत्मा (सर्वशक्तिमान ईश्वर) के प्रति विश्वास बना लिया था, अतः किसी भी ऐसे व्यक्ति को, जो उस विश्वास की सत्यता या उस परम-आत्मा के अस्तित्व ही को चुनौती दे, विधर्मी, विश्वासघती कहा जाएगा। यदि उसके तर्क इतने अकाट्य हैं कि उनका खंडन वितर्क द्वारा नहीं हो सकता और उसकी आस्था इतनी

प्रबल है कि उसे ईश्वर के प्रकोप से होने वाली विपत्तियों का भय दिखाकर दबाया नहीं जा सकता – तो उसकी यह कहकर निंदा की जाएगी कि वह वृथाभिमानी है, उसकी प्रकृति पर अहंकार हावी है। तो इस व्यर्थ विवाद पर समय नष्ट करने का क्या लाभ? फिर इन सारी बातों पर बहस करने की कोशिश क्यों? यह लंबी बहस इसलिए, क्योंकि जनता के सामने यह प्रश्न आज पहली बार आया है, और आज ही पहली बार इस पर वस्तुगत रूप में चर्चा हो रही है।

जहाँ तक पहले प्रश्न की बात है, मैं समझता हूँ कि मैने यह साफ कर दिया है कि यह मेरा अहंकार नहीं था, जो मुझे नास्तिकता की ओर ले गया। मेरे तर्क का तरीका संतोषप्रद सिद्ध होता है या नहीं, इसका निर्णय मेरे पाठकों को करना है, मुझे नहीं। मैं जानता हूँ कि वर्तमान परिस्थितियों में ईश्वर पर विश्वास ने मेरा जीवन आसान और मेरा बोझ हल्का कर दिया होता और उस पर मेरे अविश्वास ने सारे वातावरण को अत्यंत शुष्क बना दिया है और परिस्थितियाँ एक कठोर रूप ले सकती हैं। थोड़ा-सा रहस्यवाद इसे कवित्वमय बना सकता है। किंतु मेरे भाग्य को किसी उन्माद का सहारा नहीं चाहिए। मैं यथार्थवादी हूँ। मैं अपनी अंतः प्रकृति पर विवेक की सहायता से विजय चाहता हूँ। इस ध्येय में मैं सदैव सफल नहीं हुआ हूँ। प्रयत्न तथा प्रयास करना मनुष्य का कर्तव्य है, सफलता तो संयोग तथा वातावरण पर निर्भर है।

और दूसरा सवाल – कि यदि यह अह्ंकार नहीं था, तो ईश्वर के अस्तित्व के बारे में प्राचीन तथा आज भी प्रचलित श्रद्धा पर अविश्वास का कोई कारण होना चाहिए। जी हां, मैं अब इस पर आता हूँ। कारण हैं। मेरे विचार से कोई भी मनुष्य जिसमें जरा-सा भी विवेक शक्ति है, वह अपने वातावरण को तार्किक रूप से समझना चाहेगा। जहाँ सीधा प्रमाण नहीं होता, वहाँ दर्शनशास्त्र महत्वपूर्ण स्थान बना लेता है। जैसा कि मैने पहले कहा था, मेरे कुछ क्रांतिकारी साथी कहा करते थे कि दर्शनशास्त्र मनुष्य की दुर्बलता का परिणाम है। जब हमारे पूर्वजों ने फुरसत के समय विश्व के रहस्य को – इसके भूत, वर्तमान एवं भविष्य को, इसके क्यों और कहाँ से को – समझने का प्रयास किया तो सीधे प्रमाणों के भारी अभाव में हर व्यक्ति ने इन प्रश्नों को अपने-अपने ढंग से हल किया। यही कारण है कि विभिन्न धार्मिक मतों के मूलतत्व में ही हमें इतना अंतर मिलता है जो कभी – कभी तो वैमनस्य तथा झगड़े का रूप ले लेता है। न केवल पूर्व और पश्चिम के दर्शनों में मतभेद है, बल्कि प्रत्येक गोलार्द्ध के विभिन्न मतों में आपस में अंतर है। एशियाई धर्मों में, इस्लाम तथा हिंदू धर्मों में जरा भी एकरूपता नहीं हैं। भारत में ही बौद्ध तथा जैन धर्म उस ब्राहम्णवाद से बहुत अलग है, जिसमें स्वयं आर्य समाज व सनातन धर्म जैसे विरोधी मत पाए जाते हैं। पुराने समय का एक अन्य स्वतंत्र विचारक चार्वाक है। उसने ईश्वर को पुराने समय में ही चुनौति दी थी। यह सभी मत एक-दूसरे के मूलभूत प्रश्नों पर मतभेद रखते हैं और हर व्यक्ति अपने को सही समझता है। यही तो दुर्भाग्य की बात है। बजाय इसके कि हम पुराने विद्वानों एवं विचारकों के अनुभवों तथा विचारों को भविष्य में अज्ञानता के विरूद्ध लड़ाई का आधार बनाएँ और इस रहस्यमय प्रश्न को हल करने की कोशिश करें, हम आलसियों की तरह, जो कि हम सिद्ध हो चुके हैं, विश्वास की – उनके कथन में अविचल एवं संशयहीन विश्वास की-चीख पुकार मचाते रहते हैं। इस प्रकार मानवता के विकास को जड़ बनाने के अपराधी हैं।

प्रत्येक मनुष्य को, जो विकास के लिए खड़ा है, रूढ़िगत विश्वासों के हर पहलू की आलोचना तथा उन पर अविश्वास करना होगा और उनको चुनौती देनी होगी. प्रत्येक प्रचलित मत की हर बात को हर कोने से तर्क की कसौटी पर कसना होगा। यदि काफी तर्क के बाद भी वह किसी सिद्धांत या दर्शन के प्रति प्रेरित होता है, तो उसके विश्वास का स्वागत है। उसका तर्क असत्य, भ्रमित या छलावा और कभी-कभी मिथ्या हो सकता है। लेकिन उसको सुधारा जा सकता है क्योंकि विवेक उसके जीवन का दिशा-सूचक है. लेकिन निरा विश्वास और अंधविश्वास

खतरनाक है. यह मस्तिष्क को मूढ़ और मनुष्य को प्रतिक्रियावादी बना देता है। जो मनुष्य यथार्थवादी होने का दावा करता है उसे समस्त प्राचीन विश्वासों को चुनौती देनी होगी। यदि वे तर्क का प्रहार न सह सके तो टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ेंगे। तब उस व्यक्ति का पहला काम होगा, तमाम पुराने विश्वासों को धराशायी करके नए दर्शन की स्थापना के लिए जगह साफ करना। यह तो नकारात्मक पक्ष हुआ। इसके बाद सही कार्य शुरू होगा, जिसमें पुनर्निर्माण के लिए पुराने विश्वासों की कुछ बातों का प्रयोग किया जा सकता है। जहाँ तक मेरा संबंध है, मैं शुरू से ही मानता हूँ कि इस दिशा में मैं अभी कोई विशेष अध्ययन नहीं कर पाया हूँ। एशियाई दर्शन को पढ़ने की मेरी बड़ी लालसा थी पर ऐसा करने का मुझे कोई संयोग या अवसर नहीं मिला। लेकिन जहाँ तक इस विवाद के नकारात्मक पक्ष की बात है, मैं प्राचीन विश्वासों के ठोसपन पर प्रश्न उठाने के संबंध में आश्वस्त हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि एक चेतन, परम-आत्मा का, जो कि प्रकृति की गति का दिग्दर्शन एवं संचालन करती है, कोई अस्तित्व नहीं है। हम प्रकृति में विश्वास करते हैं और समस्त प्रगति का ध्येय मनुष्य द्वारा, अपनी सेवा के लिए, प्रकृति पर विजय पाना है। इसको दिशा देने के लिए पीछे कोई चेतन शक्ति नहीं है। यही हमारा दर्शन है।

जहाँ तक नकारात्मक पहलू की बात है, हम आस्तिकों से कुछ प्रश्न करना चाहते हैं-

(i) यदि, जैसा कि आपका विश्वास है, एक सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक एवं सर्वज्ञानी ईश्वर है जिसने कि पृथ्वी या विश्व की रचना की, तो कृपा करके मुझे यह बताएं कि उसने यह रचना क्यों की? कष्टों और आफतों से भरी इस दुनिया में असंख्य दुखों के शाश्वत और अनंत गठबंधनों से ग्रसित एक भी प्राणी पूरी तरह सुखी नहीं.

कृपया, यह न कहें कि यही उसका नियम है. यदि वह किसी नियम में बँधा है तो वह सर्वशक्तिमान नहीं. फिर तो वह भी हमारी ही तरह गुलाम है. कृपा करके यह भी न कहें कि यह उसका शगल है। नीरो ने सिर्फ एक रोम जलाकर राख किया था। उसने चंद लोगों की हत्या की थी। उसने तो बहुत थोड़ा दुख पैदा किया, अपने शौक और मनोरंजन के लिए। और उसका इतिहास में क्या स्थान है? उसे इतिहासकार किस नाम से बुलाते हैं? सभी विषैले विशेषण उस पर बरसाए जाते हैं। जालिम, निर्दयी, शैतान-जैसे शब्दों से नीरो की भर्त्सना में पृष्ठ के पृष्ठ रंगे पड़े हैं। एक चंगेज खाँ ने अपने आनंद के लिए कुछ हजार जानें ले लीं और आज हम उसके नाम से घृणा करते हैं। तब फिर तुम उस सर्वशक्तिमान अनंत नीरो को जो हर दिन, हर घंटे और हर मिनट असंख्य दुख देता रहा है और अभी भी दे रहा है, किस तरह न्यायोचित ठहराते हो? फिर तुम उसके उन दुष्कर्मों की हिमायत कैसे करोगे, जो हर पल चंगेज के दुष्कर्मों को भी मात दिए जा रहे हैं? मैं पूछता हूँ कि उसने यह दुनिया बनाई ही क्यों थी - ऐसी दुनिया जो सचमुच का नर्क है, अनंत और गहन वेदना का घर है? सर्वशक्तिमान ने मनुष्य का सृजन क्यों किया जबकि उसके पास मनुष्य का सृजन न करने की ताकत थी? इन सब बातों का तुम्हारे पास क्या जवाब है? तुम यह कहोगे कि यह सब अगले जन्म में, इन निर्दोष कष्ट सहने वालों को पुरस्कार और गलती करने वालों को दंड देने के लिए हो रहा है। ठीक है, ठीक है। तुम कब तक उस व्यक्ति को उचित ठहराते रहोगे जो हमारे शरीर को जख्मी करने का साहस इसलिए करता है कि बाद में इस पर बहुत कोमल तथा आरामदायक मलहम लगाएगा? ग्लैडिएटर संस्था के व्यवस्थापकों तथा सहायकों का यह काम कहाँ तक उचित था कि एक भूखे-खूँख्वार शेर के सामने मनुष्य को फेंक दो कि यदि वह उस जंगली जानवर से बचकर अपनी जान बचा लेता है तो उसकी खूब देख-भाल की जाएगी? इसलिए मैं पूछता हूँ, ''उस परम चेतन और सर्वोच्च सत्ता ने इस विश्व और उसमें मनुष्यों का सृजन क्यों किया? आनंद लूटने के लिए? तब उसमें और नीरो में क्या फर्क है?''

मुसलमानों और ईसाइयों। हिंदू-दर्शन के पास अभी और भी तर्क हो सकते हैं। मैं पूछता हूँ कि तुम्हारे पास ऊपर पूछे गए प्रश्नों का क्या उत्तर है? तुम तो पूर्व जन्म में विश्वास नहीं करते। तुम तो हिन्दुओं की तरह यह तर्क पेश नहीं कर सकते कि प्रत्यक्षतः निर्दोष व्यक्तियों के कष्ट उनके पूर्व जन्मों के कुकर्मों का फल है। मैं तुमसे पूछता हूँ कि उस सर्वशक्तिशाली ने विश्व की उत्पत्ति के लिए छः दिन मेहनत क्यों की और यह क्यों कहा था कि सब ठीक है। उसे आज ही बुलाओ, उसे पिछला इतिहास दिखाआ। उसे मौजूदा परिस्थितियों का अध्ययन करने दो। फिर हम देखेंगे कि क्या वह आज भी यह कहने का साहस करता है - सब ठीक है।

कारावास की काल-कोठरियों से लेकर, झोपड़ियों और बस्तियों में भूख से तड़पते लाखों-लाख इंसानों के समुदाय से लेकर, उन शोषित मजदूरों से लेकर जो पूँजीवादी पिशाच द्वारा खून चूसने की क्रिया को धैर्यपूर्वक या कहना चाहिए, निरुत्साहित होकर देख रहे हैं। और उस मानव-शक्ति की बर्बादी देख रहे हैं जिसे देखकर कोई भी व्यक्ति, जिसे तनिक भी सहज ज्ञान है, भय से सिहर उठेगा; और अधिक उत्पादन को जरूरतमंद लोगों में बाँटने के बजाय समुद्र में फेंक देने को बेहतर समझने से लेकर राजाओं के उन महलों तक - जिनकी नींव मानव की हड्डियों पर पड़ी है.. . उसको यह सब देखने दो और फिर कहे - ''सबकुछ ठीक है।'' क्यों और किसलिए? यही मेरा प्रश्न है। तुम चुप हो? ठीक है, तो मैं अपनी बात आगे बढ़ाता हूँ।

और तुम हिंदुओ, तुम कहते हो कि आज जो लोग कष्ट भोग रहे हैं, ये पूर्वजन्म के पापी हैं। ठीक है। तुम कहते हो आज के उत्पीड़क पिछले जन्मों में साधु पुरुष थे, अतः वे सत्ता का आनंद लूट रहे हैं। मुझे यह मानना पड़ता है कि आपके पूर्वज बहुत चालाक व्यक्ति थे। उन्होंने ऐसे सिद्धांत गढ़े जिनमें तर्क और अविश्वास के सभी प्रयासों को विफल करने की काफी ताकत है। लेकिन हमें यह विश्लेषण करना है कि ये बातें कहाँ तक टिकती हैं।

न्यायशास्त्र के सर्वाधिक प्रसिद्ध विद्वानों के अनुसार, दंड को अपराधी पर पड़नेवाले असर के आधार पर, केवल तीन-चार कारणों से उचित ठहराया जा सकता है। वे हैं प्रतिकार, भय तथा सुधार। आज सभी प्रगतिशील विचारकों द्वारा प्रतिकार के सिद्धांत की निंदा की जाती है। भयभीत करने के सिद्धांत का भी अंत वही है। केवल सुधार करने का सिद्धांत ही आवश्यक है और मानवता की प्रगति का अटूट अंग है। इसका उद्देश्य अपराधी को एक अत्यंत योग्य तथा शांतिप्रिय नागरिक के रूप में समाज को लौटाना है। लेकिन यदि हम यह बात मान भी लें कि कुछ मनुष्यों ने (पूर्व जन्म में) पाप किए हैं तो ईश्वर द्वारा उन्हें दिए गए दंड की प्रकृति क्या है? तुम कहते हो कि वह उन्हें गाय, बिल्ली, पेड़, जड़ी-बूटी या जानवर बनाकर पैदा करता है. तुम ऐसे 84 लाख दंडों को गिनाते हो। मैं पूछता हूँ कि मनुष्य पर सुधारक के रूप में इनका क्या असर है? तुम ऐसे कितने व्यक्तियों से मिले हो जो यह कहते हैं कि वे किसी पाप के कारण पूर्वजन्म में गदहा के रूप में पैदा हुए थे? एक भी नहीं? अपने पुराणों से उदाहरण मत दो। मेरे पास तुम्हारी पौराणिक कथाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। और फिर, क्या तुम्हें पता है कि दुनिया में सबसे बड़ा पाप गरीब होना है? गरीबी एक अभिशाप है, वह एक दंड है। मैं पूछता हूँ कि अपराध-विज्ञान, न्यायशास्त्र या विधिशास्त्र के एक ऐसे विद्वान की आप कहाँ तक प्रशंसा करेंगे जो किसी ऐसी दंड-प्रक्रिया की व्यवस्था करे जो कि अनिवार्यतः मनुष्य को और अधिक अपराध करने को बाध्य करे? क्या तुम्हारे ईश्वर ने यह नहीं सोचा था? या उसको भी ये सारी बातें - मानवता द्वारा अकथनीय कष्टों के झेलने की कीमत

पर – अनुभव से सीखनी थीं? तुम क्या सोचते हो। किसी गरीब तथा अनपढ़ परिवार, जैसे एक चमार या मेहतर के यहाँ पैदा होने पर इन्सान का भाग्य क्या होगा? चूँकि वह गरीब है, इसलिए पढ़ाई नहीं कर सकता। वह अपने उन साथियों से तिरस्कृत और त्यक्त रहता है जो ऊँची जाति में पैदा होने की वजह से अपने को उससे ऊँचा समझते हैं। उसका अज्ञान, उसकी गरीबी तथा उससे किया गया व्यवहार उसके हृदय को समाज के प्रति निष्ठुर बना देते हैं। मान लो यदि वह कोई पाप करता है तो उसका फल कौन भोगेगा? ईश्वर, वह स्वयं या समाज के मनीषी? और उन लोगों के दंड के बारे में तुम क्या कहोगे जिन्हें दंभी और घमंडी ब्राह्मणों ने जान-बूझकर अज्ञानी बनाए रखा तथा जिन्हें तुम्हारी ज्ञान की पवित्र पुस्तकों-वेदों के कुछ वाक्य सुन लेने के कारण कान में पिघले सीसे की धारा को सहने की सजा भुगतनी पड़ती थी? यदि वे कोई अपराध करते हैं तो उसके लिए कौन जिम्मेदार होगा और उसका प्रहार कौन सहेगा? मेरे प्रिय दोस्तों ! ये सारे सिद्धांत विशेषाधिकार युक्त लोगों के आविष्कार हैं। ये अपनी हथियाई हुई शक्ति, पूँजी तथा उच्चता को इन सिद्धान्तों के आधार पर सही ठहराते हैं। जी हाँ, शायद वह अपटन सिंक्लेयर ही था, जिसने किसी जगह लिखा था कि मनुष्य को बस (आत्मा की) अमरता में विश्वास दिला दो और उसके बाद उसका सारा धन व संपत्ति लूट लो. वह बगैर बड़बड़ाए इस कार्य में तुम्हारी सहायता करेगा। धर्म के उपदेशकों तथा सत्ता के स्वामियों के गठबंधन से ही जेल, फाँसीघर, कोड़े और ये सिद्धांत उपजते हैं.

मैं पूछता हूँ कि तुम्हारा सर्वशक्तिशाली ईश्वर हर व्यक्ति को उस समय क्यों नहीं रोकता है जब वह कोई पाप या अपराध कर रहा होता है? ये तो वह बहुत आसानी से कर सकता है। उसने क्यों नहीं लड़ाकू राजाओं को या उनके अंदर लड़ने के उन्माद को समाप्त किया और इस प्रकार विश्वयुद्ध द्वारा मानवता पर पड़ने वाली विपत्तियों से उसे क्यों नहीं बचाया? उसने अंग्रेजों के मस्तिष्क में भारत को मुक्त कर देने हेतु भावना क्यों नहीं पैदा की? वह क्यों नहीं पूँजीपतियों के हृदय में यह परोपकारी उत्साह भर देता कि वे उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत संपत्ति का अपना अधिकार त्याग दें और इस प्रकार न केवल सम्पूर्ण श्रमिक समुदाय, वरन समस्त मानव-समाज को पूँजीवाद की बेड़ियों से मुक्त करें। आप समाजवाद की व्यावहारिकता पर तर्क करना चाहते हैं। मैं इसे आपके सर्वशक्तिमान पर छोड़ देता हूँ कि वह इसे लागू करे. जहाँ तक जनसामान्य की भलाई की बात है, लोग समाजवाद के गुणों को मानते हैं, पर वह इसके व्यावहारिक न होने का बहाना लेकर इसका विरोध करते हैं। चलो, आपका परमात्मा आए और वह हर चीज को सही तरीके से कर दें। अब घुमा-फिराकर तर्क करने का प्रयास न करें, वह बेकार की बातें हैं। मैं आपको यह बता दूँ कि अंग्रेजों की हुकूमत यहाँ इसलिए नहीं है कि ईश्वर चाहता है, बल्कि इसलिए कि उनके पास ताकत है और हम में उनका विरोध करने की हिम्मत नहीं। वे हमें अपने प्रभुत्व में ईश्वर की सहायता से नहीं रखे हुए हैं बल्कि बंदूकों, राइफलों, बम और गोलियों, पुलिस और सेना के सहारे रखे हुए हैं। यह हमारी ही उदासीनता है कि वे समाज के विरुद्ध सबसे निंदनीय अपराध – एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र द्वारा अत्याचारपूर्ण शोषण – सफलतापूर्वक कर रहे हैं। कहाँ है ईश्वर? वह क्या कर रहा है? क्या वह मनुष्य जाति के इन कष्टों का मजा ले रहा है? वह नीरो है, चंगेज है, तो उसका नाश हो।

क्या तुम मुझसे पूछते हो कि मैं इस विश्व की उत्पत्ति और मानव की उत्पत्ति की व्याख्या कैसे करता हूँ? ठीक है, मैं तुम्हें बतलाता हूँ। चार्ल्स डार्विन ने इस विषय पर कुछ प्रकाश डालने की कोशिश की है। उसको पढ़ो। सोहन स्वामी की 'सहज ज्ञान' पढ़ो। तुम्हें इस सवाल का कुछ सीमा तक उत्तर मिल जाएगा। यह (विश्व-सृष्टि) एक प्राकृतिक घटना है। विभिन्न पदार्थों के, निहारिका के आकार में, आकस्मिक मिश्रण से पृथ्वी बनी। कब? इतिहास

देखो। इसी प्रकार की घटना से जंतु पैदा हुए और एक लंबे दौर के बाद मानव। डारविन की 'जीव की उत्पत्ति' पढ़ो। और तदुपरांत सारा विकास मनुष्य द्वारा प्रकृति से लगातार संघर्ष और उस पर विजय पाने की चेष्टा से हुआ। यह इस घटना की संभवतः सबसे संक्षिप्त व्याख्या है।

तुम्हारा दूसरा तर्क यह हो सकता है कि क्यों एक बच्चा अंधा या लंगड़ा पैदा होता है, यदि यह उसके पूर्वजन्म में किए कार्यों का फल नहीं है तो? जीवविज्ञान-वेत्ताओं ने इस समस्या का वैज्ञानिक समाधान निकाला है। उनके अनुसार इसका सारा दायित्व माता-पिता के कंधों पर है जो अपने उन कार्यों के प्रति लापरवाह अथवा अनभिज्ञ रहते हैं जो बच्चे के जन्म के पूर्व ही उसे विकलांग बना देते हैं.

स्वभावतः तुम एक और प्रश्न पूछ सकते हो - यद्यपि यह निरा बचकाना है। वह सवाल यह कि यदि ईश्वर कहीं नहीं है तो लोग उसमें विश्वास क्यों करने लगे? मेरा उत्तर संक्षिप्त तथा स्पष्ट होगा - जिस प्रकार लोग भूत-प्रेतों तथा दुष्ट-आत्माओं में विश्वास करने लगे, उसी प्रकार ईश्वर को मानने लगे। अंतर केवल इतना है कि ईश्वर में विश्वास विश्वव्यापी है और उसका दर्शन अत्यंत विकसित। कुछ उग्र परिवर्तनकारियों (रेडिकल्स) के विपरीत मैं इसकी उत्पत्ति का श्रेय उन शोषकों की प्रतिभा को नहीं देता जो परमात्मा के अस्तित्व का उपदेश देकर लोगों को अपने प्रभुत्व में रखना चाहते थे और उनसे अपनी विशिष्ट स्थिति का अधिकार एवं अनुमोदन चाहते थे। यद्यपि मूल बिंदु पर मेरा उनसे विरोध नहीं है कि सभी धर्म, सम्प्रदाय, पंथ और ऐसी अन्य संस्थाएँ अन्त में निर्दयी और शोषक संस्थाओं, व्यक्तियों तथा वर्गों की समर्थक हो जाती हैं। राजा के विरुद्ध विद्रोह हर धर्म में सदैव ही पाप रहा है।

ईश्वर की उत्पत्ति के बारे में मेरा अपना विचार यह है कि मनुष्य ने अपनी सीमाओं, दुर्बलताओं व कमियों को समझने के बाद, परीक्षा की घड़ियों का बहादुरी से सामना करने स्वयं को उत्साहित करने, सभी खतरों को मर्दानगी के साथ झेलने तथा संपन्नता एवं ऐश्वर्य में उसके विस्फोट को बाँधने के लिए-ईश्वर के काल्पनिक अस्तित्व की रचना की। अपने व्यक्तिगत नियमों और अभिभावकीय उदारता से पूर्ण ईश्वर की बढ़ा-चढ़ाकर कल्पना एवं चित्रण किया गया। जब उसकी उग्रता तथा व्यक्तिगत नियमों की चर्चा होती है तो उसका उपयोग एक डरानेवाले के रूप में किया जाता है, ताकि मनुष्य समाज के लिए एक खतरा न बन जाए। जब उसके अभिभावकीय गुणों की व्याख्या होती है तो उसका उपयोग एक पिता, माता, भाई, बहन, दोस्त तथा सहायक की तरह किया जाता है। इस प्रकार जब मनुष्य अपने सभी दोस्तों के विश्वासघात और उनके द्वारा त्याग देने से अत्यंत दुखी हो तो उसे इस विचार से सांत्वना मिल सकती है कि एक सच्चा दोस्त उसकी सहायता करने को है, उसे सहारा देगा, जो कि सर्वशक्तिमान है और कुछ भी कर सकता है। वास्तव में आदिम काल में यह समाज के लिए उपयोगी था। विपदा में पड़े मनुष्य के लिए ईश्वर की कल्पना सहायक होती है।

समाज को इस ईश्वरीय विश्वास के विरूद्ध उसी तरह लड़ना होगा जैसे कि मूर्ति-पूजा तथा धर्म-संबंधी क्षुद्र विचारों के विरूद्ध लड़ना पड़ा था। इसी प्रकार मनुष्य जब अपने पैरों पर खड़ा होने का प्रयास करने लगे और यथार्थवादी बन जाए तो उसे ईश्वरीय श्रद्धा को एक ओर फेंक देना चाहिए और उन सभी कष्टों, परेशानियों का पौरुष के साथ सामना करना चाहिए जिसमें परिस्थितियाँ उसे पलट सकती हैं। मेरी स्थिति आज यही है। यह मेरा अहंकार नहीं है।

मेरे दोस्तों, यह मेरे सोचने का ही तरीका है जिसने मुझे नास्तिक बनाया है। मैं नहीं जानता कि ईश्वर में विश्वास और रोज-बरोज की प्रार्थना - जिसे मैं मनुष्य का सबसे अधिक स्वार्थी और गिरा हुआ काम मानता हूँ - मेरे लिए सहायक सिद्ध होगी या मेरी स्थिति को और चौपट कर देगी। मैंने उन नास्तिकों के बारे में पढ़ा है, जिन्होंने सभी विपदाओं का बहादुरी से सामना किया, अतः मैं भी एक मर्द की तरह फाँसी के फंदे की अंतिम घड़ी तक सिर ऊँचा किए खड़ा रहना चाहता हूँ।

देखना है कि मैं इस पर कितना खरा उतर पाता हूँ। मेरे एक दोस्त ने मुझे प्रार्थना करने को कहा। जब मैंने उसे अपने नास्तिक होने की बात बतलाई तो उसने कहा, 'देख लेना, अपने अंतिम दिनों में तुम ईश्वर को मानने लगोगे।' मैंने कहा, 'नहीं प्रिय महोदय, ऐसा नहीं होगा। ऐसा करना मेरे लिए अपमानजनक तथा पराजय की बात होगी। स्वार्थ के लिए मैं प्रार्थना नहीं करूँगा।' पाठकों और दोस्तो, क्या यह अहंकार है? अगर है, तो मैं इसे स्वीकार करता हूँ।